NEERAJ®

Serving Education for Last 40 Years

अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य

B.H.D.E.-141

Chapter Wise Reference Book
Including Many Solved Sample Papers

Based on

C.B.C.S. (Choice Based Credit System) Syllabus of

I.G.N.O.U.

& Various Central, State & Other Open Universities

By: *Dr. Rajesh Kumar*

NEERAJ
PUBLICATIONS
(Publishers of Educational Books)

Mob.: 8510009872, 8510009878 E-mail: info@neerajbooks.com
Website: www.neerajbooks.com

MRP ₹ 280/-

Content

अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य

Question Paper—June-2024 (Solved) 1
Question Paper—December-2023 (Solved) 1-2
Question Paper—June-2023 (Solved) 1-2
Question Paper—December-2022 (Solved) 1-2

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

विमर्शों की सैद्धांतिकी और व्यावहारिकी (भाग-1)

1. दलित विमर्श : अवधारणा और आंदोलन 1
2. स्त्री विमर्श : अवधारणा और आंदोलन 18
3. आदिवासी विमर्श : अवधारणा और आंदोलन 35
4. सलाम (ओमप्रकाश वाल्मीकि) : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 45
5. धूणी तपे तीर : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 54
6. व्यक्तित्व की भूख (सुमित्रा कुमारी सिन्हा) : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 63

विमर्शों की सैद्धांतिकी और व्यावहारिकी (भाग-2)

7. दलित कविता : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 77

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

8. स्त्री कविता : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 90

9. 'अन्या से अनन्या' (प्रभा खेतान) : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 115

10. 'मुर्दहिया' (डॉ. तुलसी राम) : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 131

11. स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न : अंतर्वस्तु और मूल्यांकन 142

12. दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर 157

■ ■

Sample Preview
of the
Solved
Sample Question
Papers

Published by:

NEERAJ PUBLICATIONS

www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

June – 2024

(Solved)

अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य **B.H.D.E.-141**

समय : 3 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 100*

नोट : *प्रथम प्रश्न अनिवार्य है। शेष में किन्हीं चार प्रश्नों के उत्तर दीजिए।*

प्रश्न 1. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

(क) राम आ बताशा खा!
राधा झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा!
जाकर बिस्तर बिछा!
अहा, नया घर है!
राम, देख यह तेरा कमरा है!
और मेरा?
ओ पगली,
लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं।
उनका कोई घर नहीं होता।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-96, व्याख्या-2

(ख) मत ब्याहना उस देश में
जहाँ आदमी से ज्यादा
ईश्वर बसते हों
जंगल नदी पहाड़ नहीं हों जहाँ
वहाँ मत कर आना मेरा लगन

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-99, व्याख्या-1

(ग) झरबेरी के सात कँटीले झाड़ों के बीच
चंपा अमरबेल बन सयानी हुई।
फिर से घर आ धमकी।
सात भाइयों के बीच सयानी चंपा
एक दिन घर की छत पर
लटकती पाई गई।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-93, व्याख्या-2

(घ) ''तुम लोग जरूर रुपया कमाना, अपने पैरों पर खड़ी होना। आखिर हमें क्या मिला? बस बच्चे पैदा करती रही।''

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-9, पृष्ठ-130, प्रश्न 6 (ग)

(ङ) अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्त्व रखता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसकी उच्छृंखल बहुलता में जितने दोष हैं वे अस्वीकार नहीं किये जा सकते, परन्तु उसके नितांत अभाव में जो अभिशाप हैं, वे भी उपेक्षणीय नहीं।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-11, पृष्ठ-146, व्याख्या-2

(च) साहित्य के क्षेत्र में बड़ी बहस यह है कि दलित लेखक अपनी कला के बारे में क्या सोचते हैं? दलित लेखक का यह पूरा-पूरा हक है कि वह साहित्यिक भाषा और साहित्यक मूल्यों पर अपने स्पष्ट और अलग विचार रखें लेकिन उस तरफ कम ध्यान देकर वह भाषा और मूल्यों को नकारने की क्षमता और स्थिति में नहीं है।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-12, पृष्ठ-165, व्याख्या-2

प्रश्न 2. स्त्री-विमर्श का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके उद्देश्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-2, पृष्ठ-25, प्रश्न 12, पृष्ठ-26, प्रश्न 3

प्रश्न 3. आदिवासी साहित्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-3, पृष्ठ-37, 'आदिवासी साहित्य की प्रवृत्तियां'

प्रश्न 4. 'व्यक्तित्व की भूख' कहानी की अंतर्वस्तु का विवेचन कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-6, पृष्ठ-68, 'व्यक्तित्व की भूख : अंतर्वस्तु'

प्रश्न 5. 'मुर्दहिया' के आधार पर स्त्री जीवन संबंधी तुलसी राम के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-10, पृष्ठ-136, प्रश्न 6

प्रश्न 6. 'सात भाइयों के बीच चंपा' कविता की अंतर्वस्तु और मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-107, प्रश्न 7, प्रश्न 8

पश्न 7. 'सोनवा के पिंजरा' कविता का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-7, पृष्ठ-87, प्रश्न 5

प्रश्न 8. आत्मकथा के रूप में 'अन्या से अनन्या' का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-9, पृष्ठ-125, प्रश्न 10

प्रश्न 9. 'स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न' की अंतर्वस्तु पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-11, पृष्ठ-156, प्रश्न 1 (अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न)'

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

December – 2023

(Solved)

अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य **B.H.D.E.-141**

समय : 3 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 100*

नोट : *प्रथम प्रश्न अनिवार्य है। शेष में किन्हीं चार प्रश्नों के उत्तर दीजिए।*

प्रश्न 1. निम्नलिखित काव्यांशों में से किन्हीं तीन की संप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) स्वभाव आखिर अनल तो अपना बता ही देगा।
धधकती आग में धुंधकारी-सरीखे
कब तक खड़े रहेंगे?
नहीं उचित है, निर्बल को अब तो सताना,
दु:सह दु:खों का देना।
विसूवियस गिरि समान ज्वालामुखी
तड़पकर अड़े रहेंगे।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-7, पृष्ठ-78, 'व्याख्या 1'

(ख) अपनी जगह से गिर कर
कहीं के नहीं रहते
केश, औरतें और नाखून
अन्वय करते थे किसी श्लोक को ऐसे
हमारे संस्कृत टीचर।
और मारे डर के जम जाती थीं
हम लड़कियां अपनी जगह पर।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-8, पृष्ठ-94, 'व्याख्या 1'

(ग) सात भाइयों के बीच
चंपा सयानी हुई।
बाँस की टहनी-सी लचक वाली,
बाप की छाती पर साँप-सी लोटती
सपनों में
काली छाया-सी डोलती
सात भाइयों के बीच
चंपा सयानी हुई।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-8, पृष्ठ-93, 'व्याख्या 1'

(घ) हाँ, टूटी हूँ...........पर कहीं तो चोट के निशान नहीं.........दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो जिन्दगी को झेल नहीं रहीं, बल्कि हँसते हुए जी रही है...।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-9, पृष्ठ-129, प्रश्न 6 (क)

(ङ) जीवन में विकास के लिए दूसरों से सहायता लेना बुरा नहीं; परन्तु किसी को सहायता दे सकने की क्षमता न रखना अभिशाप है। सहयात्री वे कहे जाते हैं, जो साथ चलते हैं; कोई अपने बोझ को सहयात्री कहकर अपना उपहास नहीं करा सकता।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-11, पृष्ठ-146, 'व्याख्या 1'

(च) दलित अपने संघर्ष की जिम्मेदारी लेने से क्यों बचता है? जो लड़ाई उस पर थोपी गई है, उबाल खाकर वह उससे लड़ता क्यों नहीं है? वह बौद्ध धर्म के, सिख धर्म के, इस्लाम के और ईसाइयत के घरों में लुकता-छिपता क्यों फिर रहा है?

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-12, पृष्ठ-164, 'व्याख्या 1'

प्रश्न 2. दलित मुक्ति संघर्ष से संबंधित डॉ. आंबेडकर के विचारों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-1, पृष्ठ-9, 'व्याख्या 2'

प्रश्न 3. स्त्री-मुक्ति आंदोलन के आप क्या समझते हैं? विवेचन कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-2, पृष्ठ-21, 'स्त्री मुक्ति आंदोलन'

प्रश्न 4. आदिवासी साहित्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें अध्याय-3, पृष्ठ-40, प्रश्न 1 एवं प्रश्न 2, पृष्ठ-43, प्रश्न 7

प्रश्न 5. 'दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे' कविता के विचार पक्ष को स्पष्ट कीजिए।

Sample Preview of The Chapter

Published by:

NEERAJ PUBLICATIONS

www.neerajbooks.com

अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य

विमर्शों की सैद्धांतिकी और व्यावहारिकी (भाग-1)

दलित विमर्श : अवधारणा और आंदोलन

1

परिचय

दलित विमर्श पर आधारित अस्मितामूलक विमर्श के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था, जाति, अस्पृश्यता, शोषण, दमन एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का एक लंबा दौर देखने को मिलता है। ईसा पूर्व गौतम बुद्ध के काल तक अन्याय एवं वर्चस्व के खिलाफ सामाजिक बदलाव करने के लिए धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलन होते रहे। भारतीय समाज अनेक जातियों में विभाजित है। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य के प्रख्यात साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 19वीं शताब्दी के के उत्तरार्द्ध में ज्योतिबा फुले एवं 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में डॉ. अंबेडकर द्वारा छेड़ा गया सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आंदोलन दलित साहित्य का प्रेरक रहा।

इस इकाई के अंतर्गत दलित चेतना, परिभाषा, उद्भव एवं विकास, महात्मा ज्योतिबा फुले का वैचारिक संघर्ष, डॉ. अंबेडकर के मुक्ति संघर्ष के विविध आयाम से अवगत हो पाएंगे।

अध्याय का विहंगावलोकन

दलित की परिभाषा

सदियों से साहित्य एवं समाज को हाशिए पर धकेल दिया गया था तथा जिसे सवर्ण समाज ने शुद्र, अतिशूद्र, अंत्यज, चाण्डाल, अवर्ण, पंचम, हरिजन आदि नाम देकर घृणा और दया का पात्र बनने पर मजबूर कर दिया गया था, वही समाज अपने आत्मबोध के आधार पर इन तमाम उपेक्षाओं को दरकिनार कर खुद 'दलित' के रूप में स्वयं की अस्मिता का बोध साहित्य, समाज एवं राजनीति तीनों के स्तर पर करा अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के अनुसार, 'दलित' को 'दया' से घृणा है, उसे दया और सहानुभूति नहीं 'अधिकार' चाहिए। आज इसकी अनुगूँज मराठी से शुरू होकर हिंदी और अन्य भारतीय भाषा-साहित्यों में नकार, वेदना और आक्रोश के साथ दलित साहित्य के रूप में सुनी जा सकती है। वर्तमान समय में 'दलित' शब्द एवं 'दलित साहित्य' अपनी अर्थवत्ता, व्यापकता, सार्थकता तथा अस्मितागतबोध के स्वरूप में सहित्यकारों के बीच साहित्यिक विमर्श के विषय प्रतिष्ठित हुए हैं। दलित साहित्य में 'दलित' शब्द के अंतर्गत कुचले गए, दबाए गए आमजनों के जीवन की उतनी पुरानी कहानी है, जितनी भारतीय हिंदू संस्कृति प्राचीन है।

शूद्रों की स्थिति की जानकारी लगभग 200 ई. पू. से 200 ई. सन् के बीच मनु के विधि ग्रंथ' मनुस्मृति' में ज्ञात होता है। मनु ने मनुस्मृति में शूद्रों के प्रति अत्यंत अमानवीयता का परिचय दिया गया है। इसमें शूद्रों और स्त्रियों को विद्या एवं वेद-पढ़ने के अधिकारों से दूर रखने के साथ, वेद-पढ़ना एवं सुनना भी निषेध माना गया था। वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, एवं स्वभाव के आधार पर मानी जाती थी, जिसमें ऊँच-नीच, उत्तम-अधम, स्पृश्य अस्पृश्य जैसी संकीर्णताओं का कोई स्थान नहीं था, कर्म के आधार पर ही व्यक्ति के वर्ण का निर्धारित होता था। कर्म के अनुसार ही व्यक्ति अपने वर्ण को बदल सकने में सक्षम था, परंतु उत्तर वैदिक काल तक आते-आते वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित न होकर जाति आधारित हो गई। डॉ. अंबेडकर इस बात को स्वीकार करते थे, ''भारतीय समाज का ताना-बाना जाति-व्यवस्था पर आधारित होता है एवं समाज के विभिन्न स्तरों में बदलाव का निर्धारण भी जाति के अनुसार माना जाता है। इस प्रकार कि स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु शैया तक चलती है।'' महात्मा गांधी ने शूद्रों के लिए 'हरिजन' शब्द दिया, जिसका विरोध इस वर्ण के लोगों द्वारा निम्न तर्कों के आधार पर किया गया–

- 'हरिजन' शब्द में दया का भाव पाया जाता है।
- मंदिरों में पाये जाने वाली देवदासियों की संतानों को भी 'हरिजन' नाम दिया जाता था, उनकी सामाजिक पहचान 'अवैध संतति' की मानी जाती थी।
- 'हरिजन' शब्द में हीनता का बोध पाया जाता है।

केंद्र सरकार, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की सरकार ने सन् 1991 में 'हरिजन' शब्द का प्रशासनिक स्तर पर प्रयोग, सामाजिक और व्यावहारिक आधार पर न करने का अध्यादेश पास किया।

प्रशासनिक तौर पर सन 1931 में 'डिप्रेस्ड क्लास' के स्थान पर 'एक्सटीरियर क्लास' (बाहरी या बहिष्कृत वर्ग) के नाम से

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

अभिहित किया गया। इसी आधार पर सन् 1931 में डॉ. अंबेडकर ने गोलमेज सम्मेलन, लंदन में इन जातियों को बहिष्कृत जाति के रूप में वैधता मिल जाने के बाद अलग से निर्वाचन का प्रस्ताव रखा, जिसका महात्मा गांधी द्वारा विरोध किया गया। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत डिप्रेस्ड क्लास एवं एक्सटीरियर क्लास की जगह 'अनुसूचित जाति', 'अनुसूचित जनजाति' शब्द प्रशासनिक आधार पर प्रयोग में लाए गये। 'दलित पैंथर्स' ने खुद के घोषणा-पत्र में 'दलित' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है कि दलित का अर्थ है अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन, मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी और नारी समाज। अतः कहा जा सकता है कि दलितों की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने का कार्य 'दलित' शब्द अभिव्यक्त कराता है।

डॉ. अंबेडकर ने 'दलित' शब्द को अस्पृश्य के आधार पर स्वीकार किया है। अस्पृश्य की जो 'अवधारणा अनटचेबुल' (The Untouchable) नामक अंग्रेजी ग्रंथ में दी है। उससे स्पष्ट होता है कि दलित का आशय डॉ. अंबेडकर ने गिरिजन, विमुक्त जातियाँ, अपराधी घोषित की हुई जातियाँ ऐक्स क्रिमिनल ट्राईब्ज (डीनोटीफाईड) (Ex-criminal tribes) (denotified) , एवं अछूत इन तीनों समुदायों को दलित कहा जाता है।

दलित चेतना आंदोलन

दलित चेतना के दार्शनिक एवं वैचारिक स्रोत विशेष रूप से गौतम बुद्ध ही रहे हैं, क्योंकि वे पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने वर्ण-व्यवस्था के औचित्य का डटकर विरोध किया। दलित चेतना और मूल प्रेरणा एवं आंदोलन को हिंदी के प्रमुख दलित लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि के कथनों से समझने का प्रयास किया जा सकता है, जो निम्न है, ''दलित चेतना सांस्कृतिक चेतना ही नहीं बल्कि एक वैकल्पिक चेतना भी कहा जा सकता है, इसलिए यह विद्रोही मानी जाती है। इस चेतना का आधार भारतीय सामाजिक संरचना है। जो जाति पर आधारित होने के साथ धार्मिक मान्यता भी प्रदान करती है। सामाजिक जाति-व्यवस्था सामाजिक अस्पृश्यता के सिद्धांत पर आधारित होती है। दलित चेतना से अभिप्राय है 'मैं कौन हूँ?' से गहनता से जुड़ा है। चेतना का सीधा संबंध दृष्टिकोण से होता है, जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक भूमिका के उस पारंपरिक छवि के तिलिस्म को दरकिनार करती है। मनुष्य के अधिकारों से वंचित कर सामाजिक तौर पर हाशिये पर धकेल दिया जाना अर्थात दलित होना है एवं उसके अस्तित्व तथा अस्मिता की लड़ाई की चेतना वास्तविक रूप से दलित चेतना है, जो दलित आंदोलनों के एक लंबे इतिहास की देन कही जा सकती है। यह चेतना साहित्य की प्रेरक बनकर दलित साहित्य के रूप में उभरकर सामने आती है, जिसके मुक्ति, स्वतंत्रता के गंभीर सरोकार पाये जाते हैं। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड-कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण-व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद विरोध, पूँजीवाद, बाजारवाद का विरोध, सांप्रदायिकता का विरोध, ब्राह्मणवाद का विरोध, अधिनायकवाद का विरोध जैसे प्रश्न दलित साहित्य के सरोकारों में सम्मिलित हैं।

दलित पैंथर आंदोलन और दलित साहित्य : अतर्संबंध

'दलित पैंथर' संगठन दलित मुक्ति आंदोलन का एक जुझारू दस्ता है, जिसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर में दिखाई देती है। अनेक दलित लेखक इस संगठन से जुड़े हुए हैं। इस संगठन का उदय बहुत ही विषमतापूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में हुआ। सिद्धार्थ कॉलेज के छात्रावासों में रहने वाले दलित एवं अदलित युवकों के संयुक्त कार्यों से 'युवक आघाड़ी' की स्थापना की गई, जिसमें विशिष्ट प्रकार के दलित युवा रचनाकार भी सम्मिलित किये गये। दया पवार, अर्जुन डांगळे, नामदेव ढसाल ज.वि. पवार, प्रह्लाद चेंदवणकर, राजा ढाले आदि दलित युवा साहित्यकार अमरीका के अश्वेत साहित्य एवं क्रांतिकारी (मुक्ति) आंदोलन से अवगत हो चुके थे।

दलित पैंथर एवं साहित्य का आपस में गहरा नाता रहा है, क्योंकि इस आंदोलन से संबंधित कार्यकर्ता विशेष रूप से रचनाकार एवं संस्कृतिकर्मी थे। दलित साहित्य आंदोलन में कुछ पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिसमें 'अस्मितादर्श' त्रैमासिक पत्रिका का सर्वाधिक योगदान रहा है। दलित साहित्य आंदोलन को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका ने शुरुआत से लेकर वर्तमान तक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाने और जनचेतना को जागृत करने की जैसी भूमिका पत्रिकाओं की रही उसी प्रकार का कार्य बाबासाहेब अंबेडकर ने 'मूक नायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि समाचार पत्रों के माध्यम से किया था। मराठी के प्रसिद्ध लेखक राजा ढाले का 'काला स्वतंत्रता दिवस' शीर्षक नाम से लेख मराठी साप्ताहिक 'साधना' में प्रकाशित हुआ। वास्तव में यही लेख बल्कि इसकी कुछ पंक्तियाँ ही 'दलित पैंथर' आंदोलन का आधार बनी।

''चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था के अंतर्गत हमारे साथ जानवरों से बदतर व्यवहार होता है, इसलिए इस वर्ण व्यवस्था को तोड़ना चाहिए। भारत को अंग्रेजों की दासता से 1947 में मुक्ति मिली, लेकिन प्रजातंत्र की घोषणा और नारों के सिवाय कुछ नहीं गांधी के सुधारों ने न तो हमें सुधारा और ना तिलक का स्वराज्य हमें इस दासता से मुक्त कर सका। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जो लौ जगाई है, वहीं से आशा की किरण दिखाई देती है। अतः दलित पैंथर आंदोलन के अगुवा साहित्यकारों ने प्रखरता से दलित साहित्य को विकसित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, जिसके कारण उनका आंदोलन एवं रचनात्मक योगदान दलित साहित्य का आधार माना जाता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य का वैचारिक आंदोलन डॉ. अंबेडकर के राजनैतिक मंच से शुरू होने के बाद उसका मूल 1920 में प्रकाशित 'मूकनायक' नामक पत्रिका से मान सकते हैं। दलित साहित्य के प्रेरक स्रोतों के रूप में महात्मा ज्योतिबा फुले की सुधारवादी दृष्टि एवं डॉ. अंबेडकर की सामाजिक समानता, हिन्दुत्व का विरोध, आर्थिक विषमता को पाटकर समानतावादी दृष्टि तथा सांस्कृतिक समस्या के साथ बौद्ध धर्म, उसका दर्शन एवं पैंथर्स को भी इस दृष्टि से देख सकते हैं। इस तरह सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में असंतोष की भावना को प्रकट कर स्वतंत्रता आंदोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ दलित जीवन की समस्याओं को उजागर करने की दृष्टि से दलित साहित्य का आंदोलन की शुरुआत हुई और लगातार बढ़ रहा है, अपने कर्तव्य पथ पर। गांधी वर्ण पर आधारित जातिवाद के अस्तित्व को बनाए रखते हुए छुआछूत को मिटाना चाहते थे, लेकिन अंबेडकर वर्ण, जाति और छुआछूत तीनों दृष्टिकोणों पर प्रहार करना चाहते थे। सन् 1848 ई. में महात्मा फुले ने पूना के बुधवार पेठ में दलितों के लिए विद्यालय की स्थापना की। वे जानते थे कि दलित और स्त्रियों

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

को जब तक शिक्षित नहीं किया जाएगा, तब अन्याय और अंधविश्वास समाज में व्याप्त रहेगा। महात्मा फुले ने 1873 ई. में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना कर सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन को एक वैचारिक रूप दिया। बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर ने दलितों पर लगे सामाजिक प्रतिबंधों को हटाने के लिए कई आंदोलन एवं कार्यक्रम किये। उनके नेतृत्व में दलित आंदोलन विकसित हुआ। पूरे देश के दलित जुड़ते चले गये। डॉ. अंबेडकर द्वारा आरंभ किये गए सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक आंदोलन ने दलित चिंतन की व्यवस्थित वैचारिक भावभूमि निर्मित की।

दलित चिंतन का उद्‌भव, विकास और वैचारिक आधार

भारतीय समाज की संरचना का स्वरूप धर्मग्रंथों के आधार पर निर्मित किया गया है, जो आधार वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है, जिसके कारण भारत में छुआछूत एवं ऊँच-नीच की प्रथा का विकराल सामाजिक यथार्थ है। विख्यात दलित चिंतक डॉ. तुलसी राम इस संबंध तार्किक दृष्टिकोण देते हुए कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं थी, बल्कि धर्म पर आधारित एक क्रूर राजनीतिक प्रणाली थी, जिसके मूल में भगवान का भय बड़ी कृत्रिमता से, किंतु निहायत संगठित रूप से खड़ा किया गया था। अत: भारतीय समाज का पूरा इतिहास तथा साहित्य इसी वर्ण प्रणाली के इर्द-गिर्द शुरू से ही चक्कर काटता चला आ रहा है।" भारतीय पौराणिक ग्रंथ वेदों से लेकर पुराणों तक के सभी साहित्य को ब्राह्मण साहित्य माना जाता है, क्योंकि उसके मूल में वर्ण-व्यवस्था को महत्व दिया गया था। सर्वप्रथम गौतम बुद्ध के नेतृत्व में ब्राह्मण साहित्य को बौद्धों ने चुनौती दी थी, परंतु उसके बाद कई शताब्दियों तक वर्ण व्यवस्था मृतप्राय हो गई थी, परंतु छठी शताब्दी के उपरांत ब्राह्मणों द्वारा बौद्धों एवं बौद्ध साहित्य को नष्ट कर देने की प्रकिया के कारण देश में वर्ण-व्यवस्था और छुआछूत का विकराल रूप पुन: जीवित हो गया। भारत के ज्यादातर विद्वानों का मत है कि भारत में आर्यों के आने से पहले लगभग 3000 ई.पू. में यहाँ के आदिवासी द्रविड़ों अथवा अनार्यों की एक समृद्ध सभ्यता देश के पश्चिमोत्तर हिस्सों में विद्यमान थी। जिसे 'सिंधु घाटी और मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा' के नाम से जाना गया है। आर्यों-अनार्यों के संघर्ष के उपरांत सभ्यता नष्ट हो गई।

जब आक्रमणकारी आर्यों और भारत के मूल निवासियों के बीच टकराव हुआ, तो उसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक भेदभाव तो अत्याधिक हुए ही, व्यवसायपरक भेदभाव भी पैदा हुए। मनुस्मृति के कुछ विशिष्ट श्लोकों के हिंदी अनुवाद के द्वारा इस मान्यता को निम्न आधार पर जान सकते हैं–

- ब्राह्मण को कठोर वचन बोलने से क्षत्रिय एक सौपण के, वैश्य हो तो दो सौ पण के दंड के योग्य माना जाता है एवं शूद्र वध के योग्य माना जाता है।
- यदि नाम एवं जाति लेकर द्रोह से द्विजों की निन्दा करता है, तो उसे जलते हुए दस अंगुल लोहे की सलाखें उसके मुंह में डाली जाएँ।
- ब्राह्मण को अगर शुद्र अहंकारवश धर्म का उपदेश देने लगे तो उसके मुंह एवं कान में गर्म तेल डाला जाए।

डॉ. तुलसी राम मानते हैं कि 'वेद', 'पुराण', 'महाभारत', 'गीता', कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', 'याज्ञवल्क्य-स्मृति', 'मनुस्मृति', 'रामायण', 'रामचरितमानस', कुमारिल भट्ट का 'श्लोकवार्तिक', 'तेजवार्तिक' और शंकराचार्य का 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' आदि सभी दलित विरोधी साहित्य की श्रेणी में आते हैं, जिनका मूल आधार वर्ण-व्यवस्था को माना जाता है।

हिंदी साहित्य के दलित आलोचक प्रमोद सिंह इस बात को स्वीकार करते हैं कि 700 ई. से 1300 ई. में ऐसे बौद्ध भिक्षु जो किसी कारणवश जीवित रह गए, लेकिन वे भारत से बाहर न जा सके वे अपने चीवर उतारकर वज्रयानी सिद्ध एवं नाथपंथियों के नाम से समाज में घूमने लगे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता थी समाजिक आधार पर बाह्याचारों, मिथ्या विधि-विधानों, आडंबरों, कर्मकांडों, पुरोहितों और कुलीनों के अभियान का खंडन-मंडन करना एवं लोकभाषा मागधी मिश्रित अपभ्रंश हिंदी का प्रयोग उसी प्रकार किया जैसे गौतम बुद्ध ने तत्कालीन लोकभाषा पाली का प्रयोग किया था। सिद्धों की तरह ही उन्होंने संस्कृत एवं अरबी-फारसी छोड़कर स्थानीय लोकभाषा में ही अछूत और अछूतों से बने मुस्लिम समाज में शोषणकारी समाज व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का स्वर तेज हुआ। गौतम बुद्ध से लेकर कबीर तक के सांस्कृतिक विचारों या चिंतन के संबंध में हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में गौतम बुद्ध से लेकर कबीर तक के सांस्कृतिक विचारों अथवा चिंतन के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

मध्यकालीन हिंदी साहित्य के भक्ति आंदोलन के संतों ने मूर्ति पूजा एवं जातिगत आचरण की निंदा कर समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा अंधविश्वासों की भरसक आलोचना की, धार्मिक आडंबर तथा पुरोहितवाद का खंडन, नैतिक आदर्श एवं साधारण जीवन पर जोर दिया गया। इस तरह जातिवाद और छुआछूत की कठोरताओं पर प्रहार करने में संतों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इनमें नंदनार, चोखामेला तथा रविदास जैसे महान दलित संत इसी कोटि में आते हैं। नंदनार को तो ब्राह्मणों ने तमिलनाडु के 53 शिव भक्त संस्कृत कवियों की कोटि में स्थान दिया था। महात्मा 'बुद्ध के काल से ही भारत में संस्कृति की दो धाराएँ विद्यमान रही हैं। एक धारा वर्णाश्रम धर्म को बचाकर रखना चाहती है, जिसका विश्वास वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों में पाया जाता है और जो धर्म के स्मृति रूपों पर श्रद्धा रखती है; मंदिर, मूर्ति, तीर्थ और व्रत में विश्वास करने वाली है। इसके आचार्य मनु, शंकर तथा उनके कवि कालिदास, जयदेव, विद्यापति और तुलसीदास हैं। दूसरी धारा बुद्ध के कमंडल से निकलकर बौद्ध आचार्यों से होकर सरहपा, नाहपा आदि सिद्धों तक पहुँची एवं उनके कवि कबीर, दादू आदि माने जाते हैं।

आधुनिक युग में दलित आंदोलन की शुरुआत महाराष्ट्र से हुई थी, जो भारत के अतिरिक्त पूरे विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसके अग्रदूत के रूप में महात्मा ज्योतिबा फुले (सन् 1827-1890 ई.) को माना जाता है। महात्मा फुले ने 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना कर इसी वर्ष उनकी क्रांतिकारी पुस्तक 'गुलामगिरी' प्रकाशित हुई, जिसने वर्ण-व्यवस्था को अंदर तक हिलाकर रख दिया।

इसी प्रकार दलित चिंतन को वैचारिक आधार प्रदान करने वालों में केरल के नारायण गरु महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर माने जाते हैं। उन्होंने जाति प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया था। उनका जन्म केरल की ईझाव नाम की दलित जाति में पैदा हुए थे। वे सभी मनुष्यों के लिए एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर की घोषणा पर विश्वास करते थे।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

दक्षिण भारत में जाति-प्रथा एवं ब्राह्मणवाद के खिलाफ आंदोलन करने वाले पेरियार रामास्वामी नायकर (1879-1973) का नाम भी उल्लेखनीय है। थे। उनका जन्म गैर-ब्राह्मण परिवार में मद्रास (आज के तमिलनाडु) में ईरोडु नाम के गांव में पैदा हुए थे। गड़रिया जाति से संबंध रखते थे, जिन्हें दक्षिण भारत में नायकर कहा जाता है। उन्होंने सन् 1944 में द्रविड़ कड़गम की स्थापना की थी। दक्षिण भारत में रामास्वामी नायकर को ब्राह्मणवाद के विरुद्ध व्यापक स्तर पर जन-चेतना जाग्रत करने का श्रेय जाता है। शिक्षा में बाधा बनने वाले ब्राह्मणों को हमेशा के लिए शिक्षा से वंचित कर देने की आवाज बुलंद की थी।

उत्तर भारत में स्वामी अछूतानंद (1879-1933), बंगाल में चाँद गुरु (1850-1930) और मध्य प्रदेश क्षेत्र में गुरु घासीदास (1756) जाति-भेद के विरुद्ध जन-जागरण अभियान चलाया हुआ था। उत्तर भारत में स्वामी अछूतानंद 'आदि हिंदू आंदोलन' के प्रवर्तक माने जाते थे। बंगाल की एकनाम शूद्र जाति में चांद गुरु का जन्म हुआ था। दलितों को वहाँ 'चंडाल की संज्ञा दी जाती थी। सन् 1891 में उन्होंने 'चंडाल' शब्द के खिलाफ आंदोलन आरंभ किया, जो 1842 तक विशाल आंदोलन के रूप में बदल गया था। सन् 1912 में 'नमः शूद्र' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया, जिसके संपादक आदित्य चौधरी बनाये गये थे। इसी से प्रेरित होकर 1914 में चाँद गुरु के अनुयायी मुकुंद मलिक ने 'पताका' पत्रिका निकाली और उसके उपरांत ढाका से एक ओर पत्रिका' नमः शूद्र हितैषी' भारत चंद सरकार के संपादन में आरंभ की गई। मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ के क्षेत्र में जागरण की ज्योति गुरु घासीदास ने प्रज्वलित की। उनका जन्म गिरौद गाँव में एक दलित परिवार में हुआ था। उनका स्वभाव धार्मिक प्रवृत्ति के संत का था। दलित समुदाय के बीच जातीय भेदभाव को दूर करने में सतनामी आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सतनामी धर्म के बारह नियम माने जाते थे, जो निम्न हैं–

(1) मनुष्य की एक ही जाति है, वह है मानव-जाति,
(2) हिंसाचार न करो,
(3) मनुष्य का एक ही धर्म सतधर्म है,
(4) मदिरापान न करो,
(5) अंधविश्वासी और परंपरावादी न बनो,
(6) भाईचारा, मेल-मिलाप बढ़ाओ,
(7) हीनभावना को त्याग दो,
(8) स्त्री-पुरुष समान हैं,
(9) मूर्ति-पूजा मत करो, मंदिर में मत जाओ,
(10) मेहनत करके कमाओ, खाओ,
(11) अपनी व्यवस्था पर अटल रहो और
(12) जीवित शरीर को मुर्दा बनाकर मत रखो।

उनके आंदोलन के तीन सूत्र थे–सतनामी बनो, संगठन बनाओ और संघर्ष करो। उनका समय 1800 ई. के आस-पास माना जाता है।

दलित चिंतन की वैचारिक भावभूमि तैयार करने में बुद्ध के उपरांत फुले और डॉ. अंबेडकर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

महात्मा ज्योतिबा फुले का वैचारिक संघर्ष

महात्मा ज्योतिबा फुले इस जातीय भेदभाव एवं आर्थिक विषमता के विरुद्ध आक्रोश भरा हुआ था। सन् 1827 में महान क्रांतिकारी ज्योतिबा फुले का जन्म महाराष्ट्र की एक माली जाति में हुआ था। पूना में और उसके इर्द-गिर्द माली जाति के लोगों को फुले (फुले वाले) कहा जाता है। उनके पिता का नाम गोविन्द राव एवं माता का नाम चिमनाबाई था। इनसे दो संतान पुत्र रत्न हुए– ज्योति और राजाराम। समाज में संकीर्णता की पराकाष्ठा का बोलबाला अधिक था। बाजीराव पेशवा ने उन्हीं ब्राह्मणों को भेंट, उपहार, दान, नौकरियाँ, इनामी भूमि दी जो 'चित्तपावन' उपजाति से संबंध रखते थे। ब्राह्मणों की दूसरी उपजातियाँ राजकीय सम्मान और पुरस्कारों को पाने की दृष्टि से उनकी सूची में चित्तपावन ब्राह्मणों से नीचे मानी जाती थीं।

पेशवा शासन में ब्राह्मणवादी भावना सामान्य आचार-व्यवहार में खतरनाक सिद्ध हो रही थी। बाजीराव पेशवा को महाराष्ट्र के सभी ब्राह्मण कृष्ण का अथवा शिव का अवतार मानकर उनके आगे पीछे घूमते अगर ब्राह्मण से किसी प्रकार का अपराध हो जाय तो दण्ड का प्रवधान नहीं होता था। सभी प्रकार की संपत्ति, पुरस्कार, उपहार, दान आदि केवल ब्राह्मणों के लिए आरक्षित माने जाते थे।

पेशवा के दुर्दम अत्याचारों, ताण्डव के कारण किसानों निर्धनों की आह कराह पेशवा के समग्र विनाश कारण बन गयी। उसके बाद किसानों ने आनन्द की दुन्दुभी बजाई, मजदूर हर्षातिरेक से नाच उठे, स्त्रियाँ, बाल, वृद्ध सभी उल्लसित होकर झूमने लगे। मराठों मानी जाने वाली राजधानी पूना का पतन हो गया और सारा वैभव ध्वस्त हो गया। समस्त मराठा राज्य ब्रिटिश शासन के अधिकार एवं प्रभाव में आ गया। सारे सामाजिक रीति-रिवाज संकीर्णता की मजबूत बंधनों से जकड़े गये। स्त्रियाँ जूता नहीं पहन सकती थी। ज्योतिबा फुले के ब्राह्मण मित्र का विवाह था। उन्हें भी निमंत्रण दिया गया था। ब्राह्मण मित्र की बारात में भी शामिल हुए। दूल्हे के साथ बारात सज-धज कर जा रही थी–ज्योतिबा भी बारात में जा रहे थे किसी ने उन्हें पहचान लिया। उसको यह बात सहन नहीं हो सकी उसने उग्र आवेश में आकर ज्योतिबा को डांटा। ज्योतिबा ने पिता की बात ध्यान से सुनी। वस्तुतः पिता नहीं चाहते थे कि सामाजिक रीति-रिवाजों का उल्लंघन करके ज्योतिबा ब्राह्मणों का कोपभाजन बनें, परन्तु ज्योतिबा पूरी रात सो नहीं सके। मानव मानव की समानता का विचार ज्योति के मानस में एक ओर ज्योतिबा ने इस बात को महसूस किया कि शूद्रों को गुलामी एवं गरीबी में ही मरना जीना है। शूद्र वर्ण में पैदा होने का अर्थ ही अपमान और दासता से लिया जाता है। यह मान्यता खुद शूद्रों के अंदर घर कर गयी थी। ज्योतिबा ने सोच-विचार कर हिन्दू समाज के इस छुआछूत, ऊँच-नीच की अमानवीय भावना एवं रूढ़ियों और अन्ध परंपराओं को सर्वत्र समाप्त करने का संकल्प लिया।

ज्योतिबा ने ऐसा संकल्प लिया कि जन्मावलम्बी वर्ण धर्म का खुलकर विरोध एवं तिरस्कार किया जाना चाहिए। हिंदू समाज में वर्ण व्यवस्था ठोस, मजबूत एवं स्थायी आकार ग्रहण कर लिया। निम्न वर्ग के लोगों ने युगानुगत वर्ण व्यवस्था को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। ज्योतिबा ने इस अज्ञानता को ध्वस्त करने के लिए विद्रोह की मशाल अपने हाथों में थाम ली थी। ज्योतिबा का दृढ़ विश्वास था कि दलित वर्ग के लोग सामाजिक समानता के खिलाफ एकजुट हो संघर्ष करेंगे, क्योंकि संकट एवं संघर्ष ही सुख और शान्ति के संस्थापक रूप बनते हैं।

तुकाराम तात्या पाद्वल की पुस्तक 'जाति भेद विवेक सार' के प्रकाशन के रूप में ज्योतिबा का नाम प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में रचनाकार ने ब्राह्मणों के सभी कर्मकांडों का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण अगस्त 1861 में प्रकाशन में आया। ज्योतिबा ने अपने समाजोद्धार के लिए किये गये संकल्प को

www.neerajbooks.com